ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL**04292**
RNI REG. NO. UPBIL/**2014/66218** **PP. No.- 112-117**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

भारत में इतिहास लेखन की पद्धतियां एवं वृत्तांत की समस्या रू एक तुलनात्मक अध्ययन

अमित कुमार तिवारी

शोध अध्येता– मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर (उ0प्र0), भारत

Received-18.01.2026, Revised-25.01.2026, Accepted-30.01.2026 **E-mail:amit22rkt@gmail.com**

सारांशः इतिहास अतीत का हूबहू प्रतिबिंब नहीं बल्कि सीमित स्रोतों के आधार पर तथा आज की सोच के अनुसार अतीत को समझने का एक प्रयास मात्र हैं। जहां इतिहास अतीत के गहन अध्ययन से संबंधित होता है वही इतिहास लेखन अतीत की व्याख्या के अध्ययन से संबंधित होता हैं। इस कारण इतिहास की व्याख्या में पूर्ण सहमति कम ही देखने को मिलती है और अक्सर इतिहास के विद्यार्थी एक ही विषय पर अलग–अलग इतिहासकारों यथा साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी एवं उपाश्रयवादी में काफी मतभेद देखते हैं। इतिहास जड़वत होने की बजाय बहते पानी की तरह सदैव परिवर्तनशील रहता हैं। यह परिवर्तनशीलता दोहरी हैं। एक ओर समय के साथ–साथ नई–नई घटनाएं घटित होती हैं और वह इतिहास का हिस्सा बन जाती है तो दूसरी ओर पुरानी घटनाओं की भी नई–नई व्याख्या नए इतिहासकारों द्वारा नए स्रोतों के आधार पर अथवा नई रुचियों एवं बदलते हुए अनुभव के आधार पर की जा सकती हैं। अलग–अलग इतिहासकारों के लेखन के तुलनात्मक अध्ययन का संबंध इतिहास लेखन से होता हैं। किसी भी ऐतिहासिक पहलू के गहन अध्ययन के लिए उसके इतिहास उसके इतिहासकार और उसके इतिहास लेखन सभी का समुचित ज्ञान होना आवश्यक हैं। यह सब इतिहास के सर्वांगीण अध्ययन को विषम तो बना देता है परंतु अत्यंत रोचक भी बना देता है और मात्र घटनाओं के अध्ययन से इतिहास को कहीं ऊपर उठा देता हैं।

कुंजीभूत शब्द– साम्राज्यवादी, मार्क्सवादी, राष्ट्रवादी, उपाश्रयवादी, पुनर्निर्माण, संकलन, औपनिवेशिक, ओरिएंटलिस्ट, उपयोगितावाद।

शोध विस्तार– भारतीय दर्शन में प्रयुक्त शब्द इतिहास, यूरोपीय फिलासफी में प्रयुक्त शब्द हिस्ट्री से भिन्न अर्थ रखने वाला हैं। इतिहास शब्द संस्कृत भाषा के तीन शब्दों 'इति' (ऐसा ही) 'ह' (निश्चित रूप से) एवं 'आस' (था) से मिलकर बना है, अर्थात् निश्चित रूप से ऐसा ही था। जो कि भारतीय दृष्टिकोण की व्यापकता तथा सार संग्रहवाद का परिचायक हैं। इतिहास शब्द का पुष्कल प्रयोग हमें प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में मिलता हैं। इतिहास शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता हैं।[1] जबकि अंग्रेजी शब्द हिस्ट्री की व्युत्पत्ति ग्रीक (यूनानी) भाषा के 'हिस्टोरिया' से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ हैः शोध (गवेषणा) से प्राप्त ज्ञान।[2] हिस्ट्री शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस (484–425 ई.पू.) ने अपनी रचना द हिस्ट्रीज में किया था। मानव जीवन के अतीत के निर्माण और पुनर्निर्माण की दिशा में मानव इतिहास लेखन संबंधी दृष्टिकोण की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका हैं। इतिहास विषयक धारणा जो 19वीं शताब्दी में प्रचलित हुई कि दस्तावेजों में उपलब्ध तथ्यों का एकबद्ध संकलन करना ही इतिहास हैं। वर्तमान समय में प्रासंगिक प्रतीत नहीं होता हैं। जिसे समझने के लिए अब तक हुए भारतीय इतिहास लेखन जो कि विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित है, का सूक्ष्म विवेचन और पड़ताल आवश्यक हैं।

साम्राज्यवादी अध्ययन पद्धति– ई. एच. कार ने इस बात को रेखांकित किया है कि तथ्य स्वयं बोलते हैं ऐसा कहना निश्चित ही सत्य नही है क्योंकि तथ्य तभी बोलते हैं जब इतिहासकार उन्हें बोलने का अवसर प्रदान करता हैं। वस्तुतः यह वही इतिहासकार तय करता है कि किन तथ्यों को प्रमुखता दी जाए या उनको किस क्रम में रखा जाए।[3] इतिहासकार द्वारा इतिहास के लेखन का मार्ग पूर्व निर्धारित अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य में ही निश्चित होता है तथा तथ्यों को उनमें फिट किया जाता हैं। उसके मध्य के अंतराल को इस प्रकार से भरा जाता है कि कभी–कभी या तो वास्तविकता अवरुद्ध हो जाती है या फिर उसे तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता हैं। भारत में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के प्रवक्ता ब्रिटिश शासन की स्थापना के बारे में इस प्रकार के इतिहास लेखन का विशिष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ब्रिटिश इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि पूर्व औपनिवेशिक या 18वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में अंधकार का युग था। उन्होंने भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य के स्वरूप को क्रांतिकारी माना है तथा यह भी कि उसके सकारात्मक परिणाम निकले हैं।[4]

अमरीकी राष्ट्रपति हेनरी ट्रूमैन ने कहा था कि इतिहास का लेखन हमेशा विजेताओं द्वारा ही किया जाता हैं।[5] भारत में भी साम्राज्य विजेता शासक वर्ग द्वारा अपने अधीन किए गए प्रजा का इतिहास लेखन किया गया। ज्यादातर इतिहास लेखक यूरोपीय थे। यूरोपीय पाठक वर्ग को ध्यान में रखकर ही उन्होंने अपनी रचनाओं का लेखन किया था। भारत और भारतवासियों की हैसियत ज्ञान के निष्क्रिय विषय से अधिक नहीं थी।[6] 18वीं सदी में ईस्ट इंडिया कंपनी के बंगाल विजय के बाद से अंग्रेजों ने भारत का इतिहास लिखना शुरू किया। रोमिला थापर इस बात को रेखांकित करती हैं कि विजित प्रदेश पर हुकूमत करने के लिए कंपनी के प्रशासकों को वहां के समाज और लोगों के बारे में जानकारी हासिल करने की जरूरत पड़ी। इसी की भरपाई के लिए अंग्रेज फौजी अफसरों और हुक्मरानों ने व्यवस्थित रूप से भारतीय समाज सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करना प्रारंभ किया। इस प्रयास के कई दौर देखने को मिलते हैं।[7]

सर्वप्रथम ओरिएंटलिस्ट विद्वानों के समूह ने भारतीय समाज, सभ्यता, संस्कृति, भाषा आदि का अध्ययन करने और समझने की कोशिश की। उनका एक उद्देश्य थाः भारत की प्राचीन संस्थाओं की समझ के द्वारा प्रशासन के काम को सरल बनाना।[8] इन विद्वानों ने एक खास तरह की रणनीति की व्याख्या को अपनाते हुए एक तरफ तो प्राचीन भारत का स्वर्णिम उल्लेख किया, तो दूसरी ओर वर्तमान को पतित व्यवस्था के एक प्रयोजनवादी मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया। जिससे औपनिवेशिक हुकूमत को न्याय संगत ठहराया जा सकें। थॉमस ट्राउटन के शब्दों में प्राच्यवादियों ने एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत किया। जिससे भारतीयों को उपनिवेशी शासन सत्ता से जोड़ा जा सके।[9] इसके लिए उन्होंने राजनीतिक उपकरण के रूप में इतिहास की एक ऐसी प्रयोजनवादी व्याख्या प्रस्तुत की जिसके अंतर्गत भारतीय और अंग्रेजों के बीच प्राचीन काल से संबंध होने का दावा किया गया था। और प्रेम के बंधन का एक भ्रम जाल गढ़ा जिससे वे भारतमें अपने शासन को स्थाई बना सकते थे।[10] पाश्चात्य ग्रन्थकारों ने भारतीय इतिहास को इस समय बहुत विकृत कर दिया गया हैं। सत्य को असत्य प्रदर्शित किया जाता है और असत्य को सत्य बनाने का प्रयत्न हो रहा हैं। उदाहरण के लिए फ्लीट और रैपसन ने तो उज्जैन के प्रसिद्ध विक्रमादित्य का नाम ही इतिहास से मिटा देने का यत्न किया हैं। क्या कहें कितने और लेखकों ने क्या क्या अन्य अनर्थ नहीं किए।[11] इसका फल अत्यन्त भयंकर हुआ है। भारतीय छात्र अपना भूत भूल गए हैं। वे इन

मिथ्या कल्पनाओं को ही सत्य समझने लगे हैं। औरों की क्या कहें महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी और देशभक्त पण्डित जवाहर लाल नेहरू भी उसी उलटे मार्ग पर चले हैं।[12]

इस विचारधारा के अंतर्गत मुख्य रूप से विलियम जोंस, एच.टी. कोलब्रुक, एन. बी. हालहेड और मैक्समूलर आदि का नाम आता हैं। एक सैनिक अधिकारी एलेक्जेंडर डाउ 1768–1771 के बीच फारसी में रचित भारतीय इतिहास की एक मानक पुस्तक का अंग्रेजी में अनुवाद किया और "द हिस्ट्री ऑफ हिंदुस्तान" का प्रकाशन किया। 1776 में एन. बी. हालहेड अपने संस्कृत के धर्मशास्त्रों का संकलन किया और अनुवाद किया जिसका परिणाम थाः ए कोड ऑफ जेन टू लॉज या ऑर्डिनेंस ऑफ पंडित।[13]

19वीं सदी में अंग्रेज विद्वानों की एक अन्य शाखा भी थी। जिसने भारत के संबंध में ओरिएंटलिस्ट विचारों को सिरे से नकार दिया इन्हें हम उपयोगितावाद के रूप में जानते हैं। वह बेंथम के विचार से प्रभावित थे। उनका मानना था कि भारत की पुरानी सभ्यता में अनेक खामियां हैं। और इसे प्रगति के रास्ते पर ले जाना है तो यहां अच्छे कानून चुस्त और प्रबुद्ध प्रशासन परिवर्तन के सबसे उपयोगी साधन साबित होंगे और कानून के शासन का विचार सुधार की सबसे आवश्यक शर्त होगी। जेम्स मिल द्वारा लिखा गया इतिहास इसी तथ्य को निरूपित करता हैं।[14] मिल ने अपने इतिहास में अपनी सारी शक्ति हिंदू संस्कृति और हिंदू चरित्र की निंदा करने में लगा दी। इस देश के इतिहास में मिल को विद्रोह, हत्याकांड, और बर्बर विजयों के सिवा और कुछ नहीं मिला।[15] इसमें बताया गया है कि भारत की राजनीति में कमजोर और दुश्चरित्र बर्बरता की घृणास्पद स्थिति के सिवा और कुछ नही है जो हिन्दुओं जैसी निक्कमी जाति पर शासन के लिए स्वाभाविक स्थिति हैं।[16]

इस क्रम में अगली प्रमुख कड़ी इंजीलवाद था। इस धारा के इतिहासकारों का दावा है कि भारत सभ्यता से वंचित नैतिक दायित्वों की पूर्ति में अक्षम, सुशासन की अवधारणा से रहित और ऐतिहासिक परिवर्तन से अछूता हैं। भारत में इस विचार के प्रवक्ता कोलकाता के पास सेरामपुर के मिशनरी थे। ब्रिटेन में इसका प्रमुख प्रतिपादक चार्ल्स ग्रांट था। उसने 1792 में ही कहा था कि भारत की मुख्य समस्या वे धार्मिक विचार है जो भारतीय जनता को अज्ञान में जकड़े हुए हैं और ईसाइयत की रोशनी फैलाकर ही इन्हें बखूबी बदला जा सकता है और भारत में ब्रिटिश राज का यही श्रेयस होना चाहिए।[17]

आगे चलकर इस साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के आधार पर किए गए अध्ययन के काम को रेगीनॉल्ड कूपलैंड और पर्सिवल स्पीयर ने आगे बढ़ाया। उनकी धारणा थी कि ब्रिटिश राज ने भारत के लोगों को स्वशासन का मार्ग दिखलाया। अंग्रेजों का दावा था कि उनकी हुकूमत तथ्यों की सटीक जानकारी के हिसाब से चलती है। उपनिवेशवादियों के इस आग्रह का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भारतीय समाज को उन्नीसवीं सदी के आखरि और बीसवीं सदी के शुरू में प्रकाशित जनगणनाओं के आँकड़ों के जरिये समझना शुरू किया। उनके सामने समाज व्यक्तियों, समुदायों, समूहों और पारिवारिक इकाइयों में बँटा हुआ खुला पड़ा था। ज्ञान की इस पद्धति को वे वस्तुनिष्ट और तटस्थ मानते थे। भारतीय ग्राम्य समुदाय की प्रकृति पर हुई ऐसी ही बहसों के गर्भ से बैडन–पावेल की 1892 की रचना द लैण्ड सिस्टम ऑफ ब्रिटिश इण्डिया ने जन्म लिया। ज्ञान–रचना की इस प्राच्यवादी प्रक्रिया ने ब्रिटिश शासन की प्रकृति बदल दी। गाँव और जाति के नेताओं के हाथ में समाज की बुनियादी संरचनाओं का नियंत्रण छोड़ने के बजाय अब उन्होंने जाति और जनजाति के हैसियतवान लोगों तक सीधे पहुँचना शुरू कर दिया। यही वह मुकाम था जब अंग्रेजों ने राजनीति और अर्थनीति के क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण हस्तक्षेपों की शुरुआत की, क्योंकि प्राच्यवादी ज्ञान ने उन्हें यकीन दिला दिया था कि भारतीय समाज व्यवस्था और उसके अंतर्निहित विचार इन क्षेत्रों का संचालन करने की क्षमता से सम्पन्न नहीं हैं। इतना ही नहीं उसने अंततः सत्ता का हस्तांतरण भी कर दिया। यह साम्राज्यवादी सोच का उदारवादी पक्ष था। लेकिन कैंब्रिजधारा के नाम से मशहूर कुछ विद्वान जिसमें अनिल सील, गैलाधर, जूडिथ ब्राउन आदि प्रमुख है कि सोच तो इस दिशा में सबसे आगे चली गई। इनका मानना है कि भारत तो कभी राष्ट्र बनने की प्रक्रिया में ही नहीं था राष्ट्र होने का सवाल तो उठता ही नहीं हैं। इस तरह भारतीय राजव्यवस्थाओं के वर्गीकरण को ये इतिहासकार भारतीय राष्ट्र अथवा भारतीय जाति या सामाजिक अवधारणाओं के रूप में स्वीकार नहीं करते हैं। इस प्रकार उनका यह निश्चित मत है कि भारत के लोग कभी भी सुनिश्चित राष्ट्रीय अस्मिता का विकास नहीं कर सकते हैं क्योंकि वह हमेशा अपनी प्राथमिक अस्मिता और उससे जुड़ी भावनाओं से नियंत्रित होते हैं। भारत में एक वास्तविक राष्ट्रवाद का उदय होना कभी संभव नहीं था। अतः ऊपर–ऊपर से देखने में जो राष्ट्रवादी आंदोलन लगता है, वह वस्तुतः स्थानीय आंदोलनों की जमघट थी। अनिल सील के मुताबिक ब्रिटिश राज की कृपा दृष्टि पाने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन एक अभिजात घुट के विरुद्ध दूसरे अभिजात गुट के संघर्ष का प्रतिनिधित्व करता था।[18] इतना ही नहीं उनका मानना है कि लोगों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने का काम भी इन स्वार्थी राष्ट्र नेताओं द्वारा अपने हित को आगे बढ़ाने के लिए किया गया। वह तो नेहरू पटेल और गांधी को भी इसी श्रेणी में रखते हैं।

इसमें से कई विद्वानों ने अपनी प्रस्थापनाओं की पुष्टि के लिए क्षेत्र विशेष की राजनीति का विशेष अध्ययन भी किया। जैसे वाशब्रूक और बेकर ने दक्षिण भारत बेईली ने इलाहाबाद तथा गार्डन जॉनसन ने 'मुंबई के नरमपंथी और गरमपंथी आंदोलन' का अध्ययन किया हैं।[19] इन अध्ययनों के आधार पर इनका कहना है कि क्षेत्रीय स्तर पर आंदोलन समूह हित को बढ़ावा देने के लिए चलाए जाते थे न कि राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल होकर राष्ट्रीय हित में काम करने के लिए। इतिहास लेखन की यह दृष्टि न सिर्फ उपनिवेशवादी शोषण, अल्प विकास और केंद्रीय अंतर्विरोध को नकारती है बल्कि उन लोगों के आदर्श तथा त्याग को भी अस्वीकार करती हैं। जिन लोगों ने उपनिवेशवाद विरोधी संग्राम में अपने प्राणों की आहुति दे दी।

कैंब्रिज इतिहासकारों ने अध्ययन के लिए नेमियर की पद्धति का असंतुलित तथा तार्किक ढंग से प्रयोग किया। जो मुख्तया भारत के राष्ट्रीय चरित्र हनन का स्वरूप हो गया। उदाहरण के लिए गांधी जी को एक धूर्त कुशलता से कार्य करने वाला (रिचर्ड गार्डन), लोकमान्य तिलक को एक कठिनाई पैदा करने वाला विवादी और जातिवादी (सी.जे.बेकर), लाला लाजपत राय को एक राजनीतिक गिरगिट (रिचर्ड गार्डन), सी.आर. दास को भारतीय राजनीति में शानदार अवसरवादी (जान गैलेधर), सुभाष चंद्र बोस को ओछा तथा दुर्जन नायक (जान गैलेधर), सी.पी. रामस्वामी अय्यर की नौकरी का इच्छुक (सी.जे.बेकर), तथा बी. सी. राय को एक गुटबाज(जान गैलेधर), बताया।[20]

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारत के विद्वत समाज ने उपरोक्त साम्राज्यवादी अध्ययन पद्धति की कड़ी आलोचना की हैं। डॉक्टर सर्वपल्ली गोपाल के शब्दों में साम्राज्यवादी अध्ययन पद्धति ने तो भारत के राष्ट्रीय आंदोलन से सभी उच्च भावनाओं, चरित्र, ईमानदारी निस्वार्थ सेवा भाव को भी उससे बाहर कर दिया। तपन राय चौधरी ने तो इस अध्ययन पद्धति का मजाक उड़ाते हुए इसे पाश्विक राजनीति पर आधारित बताया हैं।[21] रामचंद्र प्रधान ने तो इसे मैक्यावली राजनीति के हद को पार करने वाली बात कही हैं।[22]

जिसमें किसी भी मानवीय गुण और उच्च भावना के लिए कोई स्थान नहीं था। यह ब्रिटिश साम्राज्यवादी वर्ग के हितों का अंध भक्ति से प्रतिनिधित्व करने वाली विचारधारा प्रतीत होतीं हैं जिसकी कोई मर्यादा नही हैं।

राष्ट्रवादी अध्ययन पद्धति– साम्राज्यवादी अध्ययन पद्धति के एकदम विपरीत राष्ट्रवादी विचारधारा का विकास हुआ। इस दृष्टिकोण के लेखकों का यह मानना था कि भारतीय संस्कृति में राष्ट्रीयता का आधार सदैव विद्यमान था और इसी आधार को लेकर औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ भारतीयों का एक हो जाना स्वाभाविक था। बंकिम चंद्र चटर्जी ने दृढ़ता के साथ कहा था कि एकता का भाव राष्ट्रीय गौरव तथा मुक्ति की आकांक्षा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नहीं है।[23] भारत एक परतंत्र राष्ट्र हैं। इसलिए भारतीय इतिहास भारतीय इतिहासकारों द्वारा वर्णित और व्याख्यित नहीं हुआ था। बंकिम चंद्र चटर्जी ने जिन त्रुटि की पहचान की उसका निदान करने की प्रवृत्ति भारतीय इतिहासकारों ने शीघ्र ही दर्शायी। यह वे इतिहासकार थे जिन्होंने बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में लिखा जब राष्ट्रवाद के उद्गम की भावना ने ऐतिहासिक पड़ताल तथा व्याख्या–विवेचना के लिए विचारधारात्मक आधार प्रदान किया।[24]

आर. सी. मजूमदार ने राष्ट्रवादी इतिहाकार पद का प्रयोग केवल उन्हीं भारतीयों के लिए करते हैं। जिन्होंने अपने देश के इतिहास की पुनः प्रस्तुति के क्रम में परीक्षण अथवा पुनः परीक्षण को अपना लक्ष्य बनाया।[25] वे कहते हैं इतिहास का संबंध आंतरिक सत्य के प्रति जिज्ञासा है, सत्य की खोज ही इतिहास हैं।[26] आर.सी.मजूमदार ने रोमेश चंद्र दत्त द्वारा तीन खंडों में लिखित पुस्तक सिविलाइजेशन इन एनशेंट इंडिया (1889) को सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्ट्रवादी इतिहास लेखन कहा है क्योंकि इसमें हिंदू संस्कृति की निष्क्रियता संबंधी यूरोपीय अवधारणा को अभिनव पुरातात्विक अनुसंधान और खोजों के आधार पर गलत सिद्ध किया गया था।[27]

राष्ट्रवादियों ने बीसवीं सदी के पहले दशक से ही साम्राज्यवादी विद्वता के आख्यान ओ को खारिज करने की शुरुआत की और अपनी परियोजना के मुताबिक नए चित्र पेश किए। उत्तर भारत में हुए 1857 के विद्रोह की घटना को केंद्र बनाकर 1909 में हिंदू राष्ट्रवादी विचारक वी.डी.सावरकर ने इंडियन वार ऑफ इंडिपेंडेंस 1857 की रचना की। साम्राज्यवादी इतिहास लेखन में जिसे सिपाही विद्रोह बताया गया था। सावरकर ने इसे राष्ट्रीय विद्रोह बताया। यह एक रोचक तथ्य है कि आगे चलकर सावरकर की यह थीसिस मोटे तौर पर ऐसे लोगों में भी जज्ब कर ली। जो हिंदू राष्ट्रवाद के मुकाबले विपरीत मुकाम पर खड़े थे। मसलन 1959 में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने इस विद्रोह से संबंधित मार्क्स और एंगल्स की रचना का संपादन किया। विदेशी प्रकाशन गृह मास्को द्वारा छापे गए इस संकलन का शीर्षक थाः द फर्स्ट वार ऑफ इंडिपेंडेंस 1857–59।[28] राष्ट्रवादियों की कोशिश थी कि इंडोलॉजी या भारत विद्या को महज एक यूरोपीय उद्यम की खाँचे से निकाल लाया जाए और भारत को एक ऐसे सत्तामूलक अस्तित्व की तरह पेश किया जाए। जो बहुत थोड़ा दृश्यमान होने और अधिकांशतः श्रृंखलाओं में जकड़ा रहने के बावजूद ऐतिहासिक घटनाओं और उनके अभिनेताओं का तात्पर्य निरूपण कर सकता हो।

राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मानना है कि ब्रिटिश राज एक शोषणकारी साम्राज्य था। जिसने केवल अपने लाभ के लिए भारत पर जबरन कब्जा किया। इस कब्जे को कायम रखने के लिए उसने विभिन्न षड्यंत्रकारी युक्तियों का सहारा लिया। लाला लाजपतराय के अनुसार अंग्रेजों ने कभी सैनिक बहादुरी और तलवार के बल पर भारत को नहीं जीता। उनकी विजय तो सूक्ष्म और धूर्ततापूर्ण राजनय से प्राप्त हुई। वह आगे लिखते हैं कि इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति जिस पर उसकी खुशहाली आधारित है का निर्माण भारत के खजाने के लूट से संभव हो सका। इंग्लैंड ने भारत को कच्चे माल के स्रोत के रूप में प्रयोग किया और भारत में तैयार माल की बिक्री की। इन सारी प्रक्रियाओं ने भारत की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को नष्ट कर दिया और भारत तथा उसके लोग गरीबी की अंधी खाई में गिर गए।[29]

राष्ट्रवादी विचारधारा के इतिहासकारों का यह भी तर्क है कि सत्ता के लिए राजनीतिक संघर्ष के आरंभ के बहुत पहले ही भारतीय समाज ने एक निजी सांस्कृतिक क्षेत्र में अपने राष्ट्रवाद की कल्पना करने लगा था। भले ही राज्य तब उपनिवेशको के हाथों में था। इसी जगह आकर उसने अपने प्रभुसत्ता के बारे में सोचा जो आधुनिक तो था पर पाश्चात्य नहीं। इन विद्वानों का यह भी विश्वास था कि राष्ट्र की चेतना उपनिवेशी शासन के साझे विरोध पर, देशभक्ति की भावना पर और भारत की प्राचीन परंपराओं में गर्व की भावना पर आधारित थी। साथ ही भारत का राष्ट्रीय आंदोलन समस्त जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करता हैं। वह किसी वर्ग विशेष का आंदोलन नहीं था जैसा कि अन्य धारा के इतिहासकारों का मानना हैं।

इतिहास लेखन के क्षेत्र में राष्ट्रवादी और साम्राज्यवादी इतिहासकारों के बीच हुई यह होड़ एक प्रकार के अंतर्विरोध से भी ग्रस्त थी। राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवादियों की कई बुनियादी स्थापनाओं को मान लिया। उन्होंने भी भारत और यूरोप को तत्विकतावादी खानों में बँाटकर अलग–अलग देखा।[30] भारत के इतिहास को हिंदू अर्थात प्राचीन, मुसलमान अर्थात मध्ययुगीन और ब्रिटिश अर्थात आधुनिक अवधियों में बांट लिया अर्थात साम्राज्यवादियों के काल विभाजन के सिद्धांत को स्वीकार किया।[31] जाति की परिघटना को समाज के खाने में डालकर राजनीति के संदर्भ से काटकर अध्ययन करने का रवैया भी अपना लिया। भारतीय सभ्यता के सांस्कृतिक आख्यान के अपरिवर्तन अस्तित्व को भी मान्यता मिल गयी।[32] अपनी पुस्तक की भूमिका में पंडित भगवद् दत्त[33] ने आजादी के बाद भारत सरकार के तत्वाधान में लिखित इतिहास और स्वतन्त्र रूप से किए गए इतिहास लेखन (विशेषकर प्राचीन भारतीय इतिहास) की सुसंगत आलोचना करते हुए उसे त्रुटिपूर्ण बताया। जिसमें पाश्चात्य प्रभाव का अनुसरण करते हुए राष्ट्रवादी इतिहास लेखन किया गया। वह इस बात से बहुत दुःखी थे कि इस प्रकार के इतिहास लेखन में किसी भी ऐसे भारतीय विद्वान को शामिल नही किया गया जो पूर्ण रूप से भारतीय ज्ञान परंपरा का ज्ञाता हो। उन्होंने साक्ष्यों सहित उन उद्धरणों को भी उद्धृत किया है, जिसमें त्रुटियां विद्यमान हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास की विकृति के पांच प्रमुख कारणों को भी रेखांकित किया हैं[34]: पहला यहूदी और ईसाई पक्षपात दूसरा मिथ्या भाषा विज्ञान तीसरा डार्विन का विकासवाद चौथा ब्रिटिश शासन का कलुषित ध्येय और पांचवां प्राचीन भारतीय इतिहास पर लिखने वालों का मोह। जिसे राष्ट्रवादी इतिहासकार भी अभी पूर्ण रूप से समाप्त नही कर सके हैं।

राष्ट्रवादी विचारधारा पर सबसे ज्यादा आलोचनात्मक रवैया मार्क्सवादियों ने अपनाया हैं। राष्ट्रवादियों के विचार को वह काल्पनिक और अमूर्त बताते हैं। जिसका वास्तविक धरातल पर कोई अस्तित्व नहीं था। उनका यह मानना है कि पूरा राष्ट्रवादी आंदोलन विशिष्ट वर्गों के नेतृत्व में संचालित किया जा रहा। यह उन्हीं वर्गों के लाभ से जुड़ा हुआ था जो इसका नेतृत्व कर रहे थे।[35] यहाँ मार्क्सवादी धारा की सोच साम्राज्यवादी लेखन के समीपस्थ दृष्टिगोचर होती। इसका कारण था संघर्ष में उनकी भागीदारी बढ़ाना है, लेकिन वास्तव में उनके हितों को संघर्ष के बाद ठंडे बस्ते में डाल दिया जाता था।[36] जाहिर है राष्ट्रवादियों की निगाह में साम्राज्यवादियों की प्रमाणिकता संदिग्ध नहीं थी, लेकिन उनके ज्ञान का विषय यानी भारत अंग्रेजों के भारत की तरह निष्क्रिय,

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-20, No.- I, Issues-39, YEAR- Jan.-March 2026

संप्रभुताहीन, जड़ और तर्क बुद्धि से वंचित नहीं था। उनका भारत पहलकदमी करता हुआ अपने अतीत में भविष्य की खोज करता हुआ दिख रहा था।

मार्क्सवादी अध्ययन पद्धति– मार्क्सवाद मूलतः जैसा की नाम से स्पष्ट है कार्ल मार्क्स (1818–83) तथा फ्रेडरिक एंगेल्स (1820–1895) के दर्शन पर आधारित विचारधारा का नाम हैं। मार्क्स ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य पर अमेरिका में न्यूयॉर्क डेली ट्रिब्यून नामक समाचार पत्र में अपने लेख प्रकाशित करवाएं। जिसमें पहली बार ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धांतों पर हिंदुस्तान के सामाजिक विश्लेषण को प्रस्तुत किया गया था। मार्क्स ने अपने लेख में स्पष्ट किया था कि पहले के आक्रमणकारियों के विपरीत अंग्रेजों की विजय बिल्कुल भिन्न थी। जहां पहले के आक्रमणकारी भारत की सांस्कृतिक श्रेष्ठता में खुद को तिरोहित कर देते थे और उसकी संस्कृति का अभिन्न अंग बन जाते थे। वही अंग्रेजों ने ऐसा नहीं किया क्योंकि उस समय तक ब्रिटेन में पूंजीवाद का प्रवेश हो चुका था। फलतः ब्रिटिश भारत का भारत की सामाजिक–आर्थिक अवस्था पर सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों तरह का प्रभाव पड़ा। कहने का तात्पर्य है कि एक तरफ तो उसने प्राचीन काल से चली आ रही ग्रामीण आत्मनिर्भर व्यवस्था को नष्ट कर दिया तो दूसरी तरफ भारत में पूंजीवादी व्यवस्था की नींव डाली।[37] समाज इतिहास के विकास में मार्क्स ने इसे प्रगतिशील कदम माना। यद्यपि वह उपनिवेश विध्वंस से उत्पन्न जनता की पीड़ा के प्रति उदासीन नहीं था। मार्क्सवादी संप्रदाय ने राष्ट्रीय आंदोलन के वर्गीय चरित्र का विश्लेषण करने और उसकी व्याख्या उपनिवेश काल के आर्थिक विकास क्रमो के आधार पर करने की कोशिश की हैं।

श्री जवाहर लाल जी अपने ऊपर मार्क्सवाद के प्रभाव को स्वीकार करते थे।[38] वह लिखते हैं– यूनानी, चीनी, और अरबों के समान भूतकाल में भारतीय ऐतिहासिक नहीं थे। (डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृ० 106) पुनः कुछ भी हो, यह सत्य है कि भारतीय लोग परंपरा और रिपोर्ट को बिना सूक्ष्म विवेचन और पूर्ण परीक्षा के इतिहास मान लेने के विचित्र रूप से भागी हैं। (पृ० 109) तथा भारत आर्य जाति का समहमदकतल मनघड़त संस्थापक था। (पृ० 112)[39] जिसका अनुसरण आजादी के बाद के तथाकथित प्रमुख मार्क्सवादी इतिहासकारों ने किया, जिसके परिणाम स्वरूप भारत के इतिहास का स्वरूप और भी विकृत हो गया। इस प्रकार के लिखित इतिहास ने सहजता से जन समुदाय के बीच में स्थान बनाना प्रारंभ कर दिया, क्योंकि इसे सत्ता ने व्यापक रूप से प्रसारित करने का कार्य किया था। जिसने प्राचीन भारतीय इतिहास दर्शन के वास्तविक बोध को, जो भारतीय जनसमुदाय को शिक्षा के माध्यम से प्राप्त होना से बहुत दूर कर दिया।

आधुनिक भारत में मार्क्सवादी इतिहास लेखन में भी रूढ़िवादिता का त्याग दो चरणों में दो अलग–अलग दिशाओं में हुआ। इसी के चलते स्वतंत्रता संग्राम में गांधीवादी राष्ट्रीयता के योगदान का पुनर्मूल्यांकन किया गया और विपिन चंद्र तथा रजत राय जैसे इतिहासकारों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण रखते हुए ही राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा के प्रति रजनी पामदत्त आदि की तुलना में अधिक सहानुभूति पूर्ण रवैया अपनाया है।[40] विशेषकर इस आंदोलन के अखिल भारतीय जन संघटनात्मक एवं व्यापक स्वरूप की प्रशंसा की एवं इसकी सामाजिक सीमाओं को नजरंदाज किए बिना औपनिवेशिक संदर्भ में इसे एक प्रगतिशील शक्ति के रूपदेखा।

आरंभिक मार्क्सवादियों यथा रजनीपाम दत्त और वी.आई. पाब्लोव (सोवियत इतिहासकार) के संकीर्ण वर्गीकरण और आर्थिक निर्धारणवाद को परिवर्ती मार्क्सवादी इतिहासकारों एस. एन. मुखर्जी, सुमित सरकार और विपिनचंद्र ने उसी रूप में प्रस्तुत न कर संशोधनवादी दृष्टिकोण अपनाया हैं। सुमित सरकार ने भारतीय शिक्षित समूह की गैर पूंजीवादी पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है और तर्क दिया है कि उनका काम उत्पादन की प्रक्रियाओं से असंबद्ध पारंपरिक बुद्धिजीवियों जैसा था, जो संसार की उदारवाद या राष्ट्रवाद जैसी वैचारिक धाराओं का प्रत्युत्तर दे रहे थे और जिन्होंने अभी तक निष्क्रिय पड़े भारतीय जन समूह की मदद ली। उन्होंने इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट कराया कि वर्ग और वर्गचेतना विश्लेषण का उपकरण हैं। जिसका पहले से अधिक कौशल और लोच के साथ उपयोग करना होगा। वे राष्ट्रवाद की वैधता को स्वीकार करने के साथ ही उसके अंदरूनी तनाव का भी उल्लेख करते हैं। जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। बिपिन चंद्र ने स्पष्ट तौर पर राष्ट्रवादी रुझान रखते हुए यह उल्लेखित किया है कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अलग–अलग समूहों का एकीकृत जन आंदोलन था, जिसका नियंत्रण पूर्ण रूप से पूंजीपतियों के हाथ में नहीं था।[41]

मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इंडोलॉजी या भारत विद्या के अनुशासन और दक्षिण एशियाई एरिया स्टडी को भी आड़े हाथों लेते हुए कहा कि इन उद्यमों के फलस्वरूप रचा वर्गेत्तर इतिहास को उत्पीड़ितों के इतिहास को पृष्ठभूमि में ढकेल देता है और टकराव के ऊपर सहमति को प्राथमिकता देने में यकीन करता हैं।[42] चूकि यह जांच पड़ताल उत्पादन की विधियों में होने वाले बदलाव को केंद्र बनाकर की जा रही थी इसलिए सारे ऐतिहासिक आख्यान पूंजीवाद की तरफ बढ़ने वाले कदमों के संदर्भ में तैयार किए जा रहे थे। यह आख्यान अधिकतर इसी नतीजे पर पहुंचते थे कि पूंजीवाद आधुनिकीकरण की प्रक्रिया बीच में ही गड़बड़ा गई हैं।

इन विचारों के तहत मार्क्स वादियों ने बंगाल के नवजागरण को आधुनिकीकरण की सफल कोशिश के रूप में देखने से इनकार कर दिया। सुमित सरकार (राजा राममोहन राय एंड ब्रेक विद द पास्ट), वरुण डे (द कॉलोनियल कॉन्टेक्स्ट ऑफ द बंगाल रेनेसा) और अशोक सेन (सोसाइटी एंड द बिनिंग ऑफ मॉर्डनाइजेशन) आदि रचनाएं यह कहती हुई नजर आती है कि देशज जमीन पर जो बुद्धिवाद विकसित हो रहा था। वह पश्चिमी संसर्ग के कारण परंपरानिष्ठता में पतित हो गया। अगर कोई आधुनिकता थी भी तो वह औपनिवेशिक आधुनिकता ही थी, जिसे नाकाम होना ही था।[43]

बिपिन चंद्र ने मार्क्सवादी और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण के बीच तालमेल बैठाने का सराहनीय प्रयास किया है, लेकिन उसके लिए उन्हें मार्क्सवादी सोच का सहारा लेना पड़ा।[44] चीन के नेता माओ के प्राथमिक और गौण विरोधाभास के सिद्धांत का उपयोग उन्होंने भारत के लोगों और ब्रिटिश राज के बीच तथा भारत के समाज के अंदर वर्ग विरोध की समस्या को समझाने और उनके बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया हैं। लेकिन यह प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या भारत के निम्न वर्ग को इस समझ से अपनी कंगाली की समस्या भूलने में मदद मिलेगी इस प्रश्न को सबाल्टर्न इतिहासकारों ने उठाया हैं।[45]

राममनोहर लोहिया ने मार्क्सवाद की बुनियादी प्रस्थापनाओं पर सवाल खड़े किए और अंकित किया कि मार्क्स पूंजीवाद का न केवल अमूर्त परीक्षण करते हैं बल्कि उसके साम्राज्यवादी संदर्भ को भी गौड़ कर देते हैं। वह इस निष्पत्ति पर पहुंचते हैं कि इतिहास की मार्क्सवादी संकल्पना अंततः एक यूरो–केंद्रित आख्यान बन जाती है। जिसमें गैर–यूरोपीय देशों का स्थान अधीनस्थ से ज्यादा नहीं हैं।[46] उनको इतिहास की मार्क्सवादी व्याख्या में यह कमी भी दिखती है कि वह इतिहास को एक सीधी रेखा में चलने वाली प्रक्रिया की तरफ प्रक्षेपित करती है और जिसके प्रस्थान बिंदु पर अनिवार्यतः यूरोप स्थित हैं। वह इतिहास के मार्क्सवादी दृष्टिकोण यूरोपीय वर्चस्व कायम करने का औजार मानते हैं।[47]

ASVP PIF-9.910/ASVS Reg. No. AZM 561/2013-14

सबाल्टर्न अध्ययन पद्धति– प्राच्यवादी, राष्ट्रवादी, मार्क्सवादी इतिहास–लेखन में परस्पर विभिन्नता होते हुए भी एक बात समान थी कि यह सभी इतिहास किसी न किसी अस्मिता पहचान की बुनियाद पर खड़े थे। प्राच्यवादी सभ्यतामूलक अस्मिता की गिरफ्त में थे। राष्ट्रवादी इतिहासकार समकालीन राष्ट्रवादी विचारधारा के दर्पण से बाहर देखने के लिए तैयार नहीं हो सकते थे। मार्क्सवादियों का प्रत्येक आख्यान पूंजीवाद के विकास को प्रमाणित या अप्रमाणित करने के मकसद से तैयार किया जाता था। इन अस्मिताओ से बंधकर इतिहास लेखन की यह प्रवृत्ति या एक सीमा तक ही विविधता मूलक हो सकती थी। इन तमाम इतिहासों के पास एक औपनिवेशिक राष्ट्रवादी या मार्क्सवादी प्रयोजनामूलकता थी। जिनके आधार पर गढ़ी गई श्रेणियों के परे जाना इनके बस की बात नहीं थी। अपनी आधारभूत सुविधाओं में निहित विकल्प की संभावनाओं का संधान करना उनके एजेंडे में नहीं था। एक आधुनिक पूंजीवादी औपनिवेशिक राष्ट्र के उदय का वास्तविक इतिहास लिखने के लिए इस बुनियाद परस्ती को अस्थिर करके इन सभी श्रेणियों के परे जाने वाली ऐतिहासिक दृष्टि की रचना जरूरी थी। 1978 में प्रकाशित एडवर्ड सईद की कृति ओरिएंटलिसम इस नई दृष्टि के लिए रास्ता साफ किया। 80के दशक में एक नया पद प्रचलित हुआ, जिसे एंटोनियो ग्राम्शी के तर्ज पर सबाल्टर्न या निम्न वर्ग इतिहास कहा गया।[48] अतीत की जिन घटनाओं पर स्वीकारात्मक मुहर लग चुकी थी।

रणजीत गुहा ने इसे अपने इतिहास लेखन का आधार बनाया हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक सबाल्टर्न स्टडीज में इस धारा के इतिहास लेखन की पद्धति, सिद्धांत और प्रक्रियाओं का विस्तृत रूप से उल्लेख किया हैं। सबाल्टर्न स्कूल आम आदमी के संघर्ष और समस्याओं के संदर्भ में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद पर विचार करता है। इसे ही नीचे से इतिहास कहा जाता हैं। इसकी प्रमुख मान्यता है कि भारत के वंचित वर्ग जिसमें ग्रामीण किसान, आदिवासी, मजदूर वर्ग, शिल्पकार आदि शामिल है का अपना समाजशास्त्रीय, मानवशास्त्रीय तथा अन्य तरह का विपुल साहित्य हैं।[49] साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध उनके पास संघर्ष की अनेक कहानियां भी हैं, क्योंकि उन पर ही उपनिवेशी व्यवस्था का सबसे प्रतिकूल प्रभाव पड़ा था। अतः उनका इतिहास ही वास्तविक राष्ट्रवाद का इतिहास माना जाना चाहिए।[50]

प्रारंभिक इतिहास लेखन पर आक्षेप करते हुए सभी सबाल्टर्न लेखक जोर देते हैं कि परंपरागत इतिहासकारों ने निम्न वर्ग का वास्तविक इतिहास आज तक नहीं लिखा हैं। उनका दूसरा आरोप है कि जन विद्रोहों की चर्चा जब इतिहास में उठी भी है तो कुलीन इतिहासकारों ने अपने–अपने राजनीतिक रुझानों के अनुरूप इसकी व्याख्या की। इन्हें कभी आजादी के संघर्ष तो कभी समाजवाद की लड़ाई का मोहरा मानकर ही अधिकतर इतिहास लिखा हैं।[51]

सबाल्टर्न इतिहास लेखन की एकलवादी और अतिवादी प्रस्थापनाओं की कई स्तरों पर आलोचना हो रही हैं। इस सिलसिले में एक ध्यान आकृष्ट करने वाला बिंदु यह है कि सबाल्टर्न अध्ययन से जुड़े ज्यादातर इतिहासकार मार्क्सवादी विचारधारा से ही निकले हैं। स्वभावतः इसकी आलोचना में भी मार्क्सवादी इतिहासकारों का स्वर ही सबसे अधिक मुखरित रहा हैं। सबाल्टर्न अध्ययन के खिलाफ पहली आपत्ति यही उठाई गई है कि इस अध्ययन के केंद्र बिंदु अर्थात सबाल्टर्न शब्द की अवधारणा ही भ्रामक हैं।[52] समाज को शुरू से परिभाषित वर्गों के अंतर्विरोध के माध्यम से देखने के बजाय कुलीन तथा निम्न जैसे स्पष्ट एवं बहुप्रयोजक समूहों के माध्यम से देखना ऐतिहासिक विश्लेषण को सुगम बनाने के बजाय और भी दुर्गम बना देता है। दूसरी आपत्ति यह है कि इस परंपरा के इतिहासकारों ने निम्न वर्ग के आर्थिक परिवेश के स्थान पर उनकी चेतना को अत्यधिक महत्व देकर उस आदर्शवाद को फिर से स्थापित करने की चेष्टा की जिसे मार्क्स अपने ऐतिहासिक विश्लेषण में पहले ही धाराशाही कर चुकाथा। तीसरी आपत्ति उठाई गई है कि इस अध्ययन से संबंधित विचारकों ने न केवल निम्न वर्ग की चेतना एवं मानसिकता के अध्ययन पर अत्याधिक जोर दिया है, बल्कि उसे उच्च वर्गीय शोषक से सभी और नेतृत्व या संगठन प्रदान करने वाले राजनीतिक दलों से भी अपेक्षाकृत स्वायत्त ही माना हैं।

इतिहास का आरंभ निश्चय ही तथ्यों की खोज से होता है लेकिन तथ्यों के बीच हमेशा से अंतर रहे हैं और किसी न किसी परिकल्पना से इस अंतर का भरना होगा। इसलिए इतिहास अपनी बुनियाद में ही एक प्रयोजनवादी तत्व से मुक्ति नहीं पा सकता। दूसरी ओर लेखक का अपना एक निजी समीकरण भी होता हैं, जो कि इतिहास लेखन की धारा को प्रभावित करता हैं। इतिहास एक आदर्शमूलक विज्ञान है इसलिए इतिहास का सरोकार सिर्फ तत्वों से नहीं बल्कि निर्णय से भी होता है और इसके लिए नैतिकता और न्याय की एक धारणा अवश्य होनी चाहिए। इतिहास लेखन की धाराओं में जो अंतर हैं। उसका मुख्य कारण भारतीय समाज की विविधता पूर्ण संरचना हैं। इसके बहुलवादी स्वरूप के कारण ही भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में अनेक ध्वनियाँ मुखरित होती रही हैं। जिन्होंने अपने–अपने ढंग से इसे व्याख्यित करने में अपनी सारी बुद्धिमत्ता लगा दी है। वह अक्सर अलग–अलग ही नहीं बल्कि परस्पर विरोधी प्रतिमान भी रखते हैं।[53]

लाल बहादुर वर्मा के शब्दों में आधुनिक इतिहास लेखन की आवश्यकताओं के संदर्भ में कह सकते हैं कि आजकल भारतवर्ष में इतिहास लेखन और जो कुछ लिखा गया है उसके पूर्व लेखन की एक साथ बात की जा रही हैं। जहां जाति, धर्म और राष्ट्र के नाम पर अनेक ग्रंथियां बनी हुई है, पूर्वाग्रह सँजोये गए हैं, इतिहास बोध और इतिहास दृष्टि का अभाव रहा हैं। जहां इतिहास लेखन की स्वस्थ और वैज्ञानिक परंपरा प्रारंभ भी नहीं हुई है, जहां न इतिहास को प्रासंगिक समझा जाता है ना इतिहासकार को और इसलिए दोनों को उचित प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हैं। वहां इतिहास को उसका उचित और सही स्थान दिलाने के लिए जरूरी है कि वैज्ञानिक शोध प्रणाली व्यापक सैद्धांतिक तैयारी और सामान्य जन से सहज और जागरूक जुड़ाव के आधार पर जनता का जनता के लिए इतिहास लिखा जाए।[54]

अतः भारत में प्रचलित इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियां और उनके विश्लेषण से संबंधित जटिल विषय को समझने के लिए हम उनमें से किसी एक का चुनाव नहीं कर सकते हैं। इसके लिए हो तो हमें बहुआयामी पद्धति का ही प्रयोग करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स वृहती दिशांअनुव्यचलत। ताम इतिहासश्च पुराणे च गाथाश्च। नाराशंसी चानुव्यचलत। अर्थात् महान लक्ष्य (दिशा) की ओर गतिशील राष्ट्र का अनुसरण इतिहास, पुराण, गाथा तथा नाराशंसी करते हैं। 15.1.7
2. बंसल, राजीव, इतिहास लेखन रू अवधारणा, विधाएं एवं साधन, एसबीपीडी पब्लिकेशन, आगरा, 2021, पृष्ठ 1
3. वर्मा, हरीशचंद्र(संपादक), मध्यकालीन भारत भाग–2(1540–1761), हिंदी माध्यम कार्यावय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 28वां संस्करण, 2016, पृष्ठ 745
4. प्रधान, रामचंद्र, राज से स्वराज रू भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 59
5. राजाराम, एन. एस., डिस्टॉर्टसन इन हिस्ट्री काजेज एंड कॉसेक्वेंस, वॉइस ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 8

6. दूबे, अभय कुमार, सामाजिक विज्ञान विश्वकोश खंड–4, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2015, पृष्ठ 1188
7. उपरोक्त, पृष्ठ 1188
8. डॉडसन, माइकल एस., ओरिएंटलिज्म, एंपायर एंड नेशनल कल्चर, पालग्रेव मैकमिलन, हैम्पशायर, 2007, पृष्ठ 61
9. प्रधान, रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 59
10. बंदोपाध्याय, शेखर, पलासी से विभाजन तक और उसके बाद, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2015, पृष्ठ 68
11. भगवदत्त, पंडित, भारतवर्ष का इतिहास रू आदि से गुप्त साम्राज्य के अंत तक, पंचनद्र प्रेस लिमिटेड, लाहौर, तृतीय संस्करण, 1946, पृष्ठ 1
12. उपरोक्त, पृष्ठ 1
13. दूबे, अभय कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 1188
14. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास खंड 2, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 455
15. मिल, जेम्स और विल्सन, एच.एच, ब्रिटिश भारत का इतिहास, खंड–2, बाल्डविन, क्रैडॉक और जॉय, लंदन, 1820 पृष्ठ 128
16. बंदोपाध्याय, शेखर, पूर्वोक्त, पृष्ठ 71
17. चन्द्र, बिपन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम कार्यांवय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली,2016, पृष्ठ 7
18. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत 1885–1947, पॉलग्रेव मैकमिलन, लंदन, द्वितीय संस्करण, 1989, पृष्ठ 6
19. प्रधान, रामचंद्र,पूर्वोक्त, पृष्ठ 61
20. मित्तल, सतीश चन्द्र, आधुनिक भारत का इतिहास चिंतन तथा लेखन रू वर्तमान स्वरूप तथा चुनौतियां, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ 98
21. चौधरी, तपन राय, इंडियन नेशनलिज्म एज एनिमल पॉलिटिक्स, द हिस्टोरिकल जर्नल 22 3(1979), पृष्ठ 747–763
22. प्रधान, रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 61
23. श्रीधरन, ई., इतिहासलेख, ओरिएंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नईदिल्ली, 2011, पृष्ठ 387
24. उपरोक्त, पृष्ठ 390
25. उपरोक्तए पृष्ठ 391
26. मजूमदार, रमेश चंद्र, हिस्टोरियोग्राफी इन मार्डर्न इंडिया, एशियन पब्लिशिंग हाउस, न्यूयॉर्क, 1967, पृष्ठ 37
27. श्रीधरन, पूर्वोक्त, पृष्ठ 391
28. दूबे, अभय कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 1190
29. प्रधान, रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 73
30. अली, मुबारक, इतिहासकार का मतांतर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 19
31. दूबे, अभय कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 1190
32. थापर, रोमिला, इतिहास की पुनर्व्याख्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पाँचवां संस्करण, 2019, पृष्ठ 91
33. दत्त, भगवद, भारतवर्ष का वृहद इतिहास (प्रथम भाग), भारतीय साहित्य भवन, दिल्ली, 1951, पृष्ठ 1–13
34. उपरोक्त, पृष्ठ 35–68
35. थापर, रोमिला, हरबंस मुखिया और विपन चंद्र, कम्युनलिज्म एंड द राइटिंग ऑफ इंडियन हिस्ट्री, पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 54
36. शुक्ल, रामलखन (संपादक), आधुनिक भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 24वाँ संस्करण, 2015, पृष्ठ 10
37. उपरोक्त पृष्ठ 32
38. http://youyu.be/DRTIPCAIbCs?si=U0K2ekoWzw6PFmkH
39. भगवदत्त, पंडित, भारतवर्ष का इतिहासरू आदि से गुप्त साम्राज्य के अंत तक, पूर्वोक्त, पृष्ठ 5
40. बंदोपाध्याय, शेखर, पूर्वोक्त, पृष्ठ 187
41. दूबे, अभय कुमार, पूर्वोक्त, पृष्ठ 1193
42. उपरोक्त, पृष्ठ 1193
43. प्रधान, रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 66
44. उपरोक्त, पृष्ठ 66
45. उपरोक्त, पृष्ठ 66
46. लोहिया, राममनोहर, इतिहास चक्र, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, नौवां पेपरबैक्स संस्करण, 2022, पृष्ठ 26
47. उपरोक्त, पृष्ठ 26
48. प्रधान, रामचंद्र, पूर्वोक्त, पृष्ठ 68
49. डपरोक्त, पृष्ठ 68
50. गुहा, रणजीत (संपादक), सबाल्टर्न स्टडीज, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1982,पृष्ठ 7
51. पन्निकर, के. एन., हिस्ट्री एस साइट ऑफ स्ट्रगल रू एस्से आन हिस्ट्री कल्चर एंड पॉलिटिक्स, थ्री एस्से कॉलेक्टिव, गुड़गाव, 2013, पृष्ठ 80
52. उपरोक्त, पृष्ठ 69
53. हबीब, इरफान (संपादक), मध्यकालीन भारत–9, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2018, पृष्ठ 110
54. दूबे, एस. एन., इतिहास दर्शन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2014, पृष्ठ 175

*****